सिर्फ संसाधनों का बढ़ना विकास नहीं

विकास पत्रकारिता या विकास संचार के संबंध में बात करते समय प्राय: भ्रम की स्थिति बनती रहती है। इसका कारण यह भी है कि विकास की मूल धारणा ही संयुक्त राष्ट्र के सोच के आधार पर विकसित हुई है। विकसित, विकासशील तथा अविकसित देशों का विभाजन इसी सोच के आधार पर हुआ। इसी आधार पर बाद में विकास की स्थितियों तथा उसके संकेतकों का निर्धारण किया गया। इन संकेतकों के आधार पर ही विकास की स्थितयों को फिर से परिभाषित किया जाकर विकास के लिए आयोजना किये जाने की सलाह दी जाती रही। मसलन, प्रारंम्भ में विकास का पैमाना वहां स्कूल, अस्पताल, सड़क, बिजली, कारखाने आदि की उपलब्धता को माना गया। एक मायने में यह कहा गया कि उन देशों में ऐसी आधारभूत संरचनायें हैं या नहीं। इसी आधार पर भारत को विकासशील कहा गया। उसके बाद उत्पादन को आधार बनाया गया। इसमें सकल घरेलू उत्पादन की स्थिति देखी गयी और उसके विस्तार तथा वृद्धि के लिए योजनायें बनीं। इसी के लगभग साथ-साथ प्रति व्यक्ति आय और प्रति व्यक्ति खपत को भी आधार बनाया गया। सबसे बाद में व्यक्ति की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा महिला कल्याण को पैमाना मानते हुए विकास की स्थिति को नापा गया। इसी के आगे मानवीय कल्याण की स्थिति क्या है, योजनाओं का उनके जीवन पर क्या असर हुआ है, यह मापते हुए विकास की स्थिस्ति जांची गई है। तात्पर्य यह कि ज्यादातर मामलों में विकास वही है, जो संयुक्त राष्ट्र सोचता है और जिसके लिए वह मदद देता है।

प्रशासनिक या अकादमिक विमर्श में ग्रोथ यानि वृद्धि या बढ़ौतरी और ड़वलपमेंट यानि विकास को अलग-अलग नहीं कर पाते हैं। दोनों एक साथ, एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये जाते रहे हैं। समृध्दि या वृध्दि तो हुई पर उसका असर शांति, सकारात्मक व्यवस्था, प्रेम, भाईचारा आदि पर नहीं पड़ा। उल्टे, अपराध बढ़े, हिंसा अधिक विस्तार पाती रही, महिलाओं का यौन उत्पीड़न बढ़ा, किसान और खेतीहर मजदूर कमजोर होते गये। पूंजी का विस्तार तो हुआ पर वह धीरे-धीरे कुछ लोगों की मुठ्ठियों में ही बंद होती गई। बाजार में उत्पादन तो बढ़ा पर वह जरूरत के बजाय आकांक्षाओं को बढ़ाता चला गया। भोगवादी वस्तुएं और संसाधन बढ़ते गये। विकसित देश एक तरफ तो इस तरह के बाजार को विकासशील देशों में मजबूत कर रहे थे। इसके लिए उन्होंने खुले बाजार की वकालत भी की। इसके समानांतर वे पर्यावरण, भूख, बेरोजगारी, हिंसा आदि के लिए

भी विमर्श कर उसको कम करने के उपाय तलाशते हुए दिखे। यह दोनों ही अंतर्विरोध विकास के विमर्श में एक साथ दिखाई देते रहे हैं। विकास के पैमाने भी इसी अंतर्विरोध को समाप्त करने के लिए बताये जाते रहे। भारत में ही देखें तो एक तरफ किसानों की आत्महत्या पर काबू नहीं पाया जा सका है। ऐसे ही, महिला यौन उत्पीड़न भी जारी है। बेरोजगारी और कम आय पर जीवन जीने की स्थितियां अब भी बनी हुई हैं। दूसरी ओर दौड़ हो रही है स्मार्ट सिटी, ड़िजीटलीकरण जैसे आधुनिकतम संसाधनों को उपलब्ध कराने की जिसे विकास के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसे ही प्राथमिकता दी जा रही है। विकास की यह दौड़ या हवा छोटे नगरों तक भी पहुंच रही है। विकास का आशय न तो इमारतें खड़ी करना है, न ही लोगों के लिए संसाधनों का विकास है। लोगों की व्यक्तिगत समृध्दि और समाज का आधुनिकतम होना दरअसल सुख, शांति, सुव्यवस्था, लोंगों के बीच सहयोग, प्रेम, भाईचारा आदि के लिए ही है, इस बात को सभी विकास के पुरस्कर्ता मानते हैं। विकास के मानवीय संकेतकों में भी यह माना गया है कि विकास के लिए किये जाने वाले कार्यों का प्रभाव व्यक्ति के जीवन में दिखाई देना चाहिये। वह स्वस्थ हो, मन और तन से। दुनिया में जितने भी समाज है, आदिम से लेकर आधुनिकतम तक, वे सब इसी मन्तव्य को विकास मानते हैं। अफ्रीका और लातीनी अमेरिका के अविकसित देशों से लेकर यूरो-अमरिका के विकसित देश भी विकास का यही अर्थ लेते हैं। तब विकास के कार्यों का मानवीय मूल्यों से अधिक संबंध होना चाहिये। उन कार्यों से लोगों में आपसी प्रेम और सहयोग बढ़े। वे एक दूसरे से नफरत न करें। हिंसा और व्यभिचार का रोग उनके मनों में नहीं रहे। वे अपने देश में रहते हुए, दुनिया भर के लोगें से प्यार और सहयोग करें। यह संसाधनों की स्पर्धा, बाजार के विकास और उत्पादन से न होकर जो कुछ किया जा रहा हे, सीधे उन तक पहुंचाने से होगा। राजनीति अपने सोच में व्यापकता लाकर ही ऐसा कर पायेगी। सांस्कृतिक मूल्यों के विकास और व्यवहार के लिए पूंजी से अधिक मानवीय व्यवहारों की संवृध्दि जरूरी होगी। उसके लिए कितने अरबपति बढ़े हैं, यह बताने के बजाये अब कोई पीछे नहीं है, अब कोई असमर्थ नहीं है, अब कोई दु:खी या पीड़ित नहीं है, ऐसी व्यवस्था करते हुए बताना होगा। इस सबके लिए विकास के सभी चिंतकों, प्रशासक, मीडिया अध्येताओं तथा मीडिया कर्मियों को विकास के संबंध में वर्तमान विकास की सोच को पूरी तरह बदलना होगा। विकास के केन्द्र में मनुष्य के कल्याण को रखते हुए उन सांस्कृतिक मूल्यों के साथ समृध्दि यानी ग्रोथ के उपाय करने होंगे जिससे समृध्दि सांस्कृतिक मूल्यों की संगति में रहे। उसकी विराधी न हो। सांस्कृतिक मूल्यों का उत्स समाज की उन परम्पराओं में

होता है जिनसे वह आपस में जुड़ा रहकर अपना विकास करता है। एक अर्थ में सांस्कृतिक मूल्यों का उत्स अध्यात्म में है। आध्यात्म व्यष्टि को समष्टि में देखेने, समझने और अनुभूत करने का आधार है। यह व्यक्ति को पूरे समूह, पूरे समाज और पूरे विश्व को कल्याणकारी भावों से जोड़ता है और सबमें समाये हुए की अनुभूति करता है। उसका मन कल्याणकारी संकल्प यानी विचार, व्यवहार का होता है और वह सभी के विचारों को आत्मसात करते हुए समानाभूति से अपने सामाजिक व्यवहार की रचना करता है।

ऐसा विकास संसाधनों के साथ मानवीयता का भी होता है। तब स्पर्धा नहीं होती, सहयोग और भाईचारा होता है। इसे अभी वायवी माना जा सकता है, पर ऐसा होना असंभव नहीं है। सभी समाजों में स्वर्ग या सतयुग की कल्पना कहीं न कहीं उनके अवचेतन से ही तो आई हुई है जो सच रही होगी। जो सच रहा है, वह सच हो भी सकता है।

****